E-ISSN: 2583-9667
Indexed Journal
Peer Reviewed Journal
https://multiresearchjournal.theviews.in

Received: 11-9-2023
Accepted: 19-9-2023

INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCE RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY

Volume 1; Issue 1; 2023; Page No. 01-06

(SPECIAL ISSUE)

शोध-पत्र शीर्षक - प्राचीन बौद्ध साहित्य और भिख्खुनी संघ ।

धीरज कु निर्भय

बौद्ध अध्ययन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय नई दिल्ली, दिल्ली, भारत

Corresponding Author: धीरज कु निर्भय

सारांश

विश्व का इतिहास पुरुषों का इतिहास रहा है, क्योंकि इसे महिलाओं की कोई चर्चा किए बगैर हीं लिखा गया था! भारत वर्ष की इसी भूमि पर (वर्तमान में लुम्बिनी नेपाल) छठी शताब्दी ईसा पूर्व शाक्य गणराज्य में रानी महामाया के गर्भ से जन्में सिद्धार्थ गौतम जब कालान्तर में बोधि प्राप्ति कर गौतम बुद्ध कहलाते हैं। मानवता के कल्याणार्थ बौद्ध संघ की स्थापना के 5 वर्ष उपरान्त उनकी विमाता महाप्रजापति गौतमी जिन्होंने इनकी माता की मृत्यु के उपरान्त बाल्य काल से हीं पालन पोषण किया था। यह विचार कर कि बुद्ध सांसारिक जीवन से अलग रहकर सबों के बीच समानता और करूणा का सन्देश देकर उनके जीवन को जन्म - मृत्यु के भव बंधन से मुक्त करने का मार्ग बता रहे हैं। अब जब मेरे जीवन का कोई उद्देश्य बचा नहीं है तो क्यों न बौद्ध संघ में दीक्षित होकर अपना और समाज का कल्याण करूं। महामानव बुद्ध भिख्खुनी संघ की स्थापना को तैयार हो जाते हैं और गौतमी के साथ आई हुई 500 अन्य महिलाओं को भी बौद्ध धर्म में दीक्षित करते हैं। यह एक ऐसी घटना थी जिसने पिछले कई शताब्दियों से परिवार, विवाह व समाज के पितृसत्तात्मक बन्धन में उलझी स्त्री समाज को अध्यात्म के क्षेत्र में अपनी मुक्ति प्राप्ति का अवसर दिया। यह संयोग आज से लगभग 2550 वर्ष पूर्व हुआ था। गौतम बुद्ध की प्रमुख महिला शिष्या - महाप्रजापति गौतमी, उप्पलवणा, पटाचारा, धम्मदिन्ना, सुंदरी नंदा, सोना, सकुला, भद्दा कुंडलकेसा, भद्दा कपिलानी, भद्दकचना, किसागोतमी, सिंघालकामाता, खेमा आदि। बौद्धोत्तर काल में भी जब देवप्रिय सम्राट अशोक महान् के द्वारा अपनी पुत्री संघमित्रा को सिंहल द्वीप भेजा जाता है तो सबसे पहले उसे भिख्खुनी के रूप में बौद्ध संघ की दीक्षा दी जाती है। सम्पूर्ण विश्व इतिहास में ऐसा कोई दूसरा उदाहरण प्राप्त नहीं होता है जहां एक पिता अपनी पुत्री को मानवता की सेवा में इस प्रकार समर्पित करते हैं।

मुख्य शब्द: बुद्ध, धर्म, नारी, समाज, भिख्खुनी, संघ, आध्यात्मिकता, संसार, भारतवर्ष, पितृसत्तात्मक, अछूत, इतिहास, थेरीगाथा, नगरवधू, सतीप्रथा, अर्हत्व, संस्कृति, ज्ञान, विद्वत्, साहित्य, गाथा।

प्रस्तावना

विश्व इतिहास में मानव व जाति की भाषा, संस्कृति व विचार-पद्धतियां पुरुषों की बनाई हुईं हैं। विश्व की रचना व प्रगति में महिलाओं को भागी बनाने के बजाय पुरुषों ने उन्हें विचित्र व बाधक वस्तु के रूप में देखा। महिलाओं के जीवन की धारा जन्म से लेकर मृत्यु तक पिता, भाई, पति और अन्ततः पुत्रों के अधीन ही मानी गई है।

सरकारें बनाने व सेनाओं की रचना करने वाले पुरुष ही थे ! अधिकतर धार्मिक परम्पराओं में, जिन्होंने भी लेखन किया उन्होंने महिलाओं की अपेक्षा केवल पुरुषों के अनुभवों व मानसिक छवियों का ही उल्लेख किया है। अर्हत्व की प्राप्ति और आत्मा की मुक्ति के लिए पुरुष योनि में जन्म लेना चाहिए, स्त्री जाति में जन्म लेने वाले को ये प्राप्त नहीं हो सकता।

जीवन चक्र से मुक्ति के लिए स्त्री को पुत्र को जन्म देना चाहिए अन्यथा उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। और यह भी कौन बताते थे, वे बाबा जो स्वयं किसी स्त्री के कोख से ही जन्मे थे। मृत्यु के उपरान्त पुत्र के हाथों मुखाग्नि न दी गई तो आत्मा को नरक में दुःख भोगना पड़ेगा या आत्मा प्रेत योनि में भटकती रहेगी, उसे मोक्ष प्राप्त नहीं होगा। सामाजिक दासी प्रथा के साथ हीं मंदिर और मठों में दासी प्रथा को प्रश्रय देने वाले ऐसे हीं लोग थे।

शोध प्रविधि – ऐतिहासिक सन्दर्भ में बौद्ध धर्म और भिख्खुनी संघ का सामाजिक अन्वेषण ।

परिचर्चा

भैषज्य गुरु बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति (बुद्धगया) के उपरान्त ऋषिपत्तन मृगदाव (काशी के निकट सारनाथ) में पंचवग्गीय भिख्खुओं के साथ धर्म-चक्र-पवत्तन किया और बुद्ध संघ की स्थापना हुई । महाकारुणिक तथागत के करुणा-मैत्री के उपदेशों से प्राणी मात्र

की व्यथा दूर हुईं । ममतामयी नारी-जाति के प्रति भी भगवान की करुणा-पूर्ण भावना थी । वे चाहते थे कि स्त्रियों को अधिकार प्राप्त हों, ताकि वे सम्मान पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें । तत्कालीन महिलाओं ने अपनी साधना एवं त्याग-भावना से मंगलमय उपदेशों को ग्रहण किया और प्रमाणित कर दिया कि कंज-कलिका-सी सुकोमल नारियाँ भी पुरुषों की भांति साधनामय जीवन बिताती हुईं अर्हत्व प्राप्त कर सकती हैं ।

भिक्खु संघ की स्थापना के 5 वर्ष उपरान्त विश्वगुरु बुद्ध अपनी विमाता महापजापती गोतमी के अनुरोध और अपने प्रिय शिष्य आनन्द के विशेष आग्रह पर भिक्खुनी संघ की स्थापना करते हैं। बौद्ध धर्म के विनय पिटक में सभी विनयों और नियमों का संग्रह आज भी उपलब्ध है जिसमें भिक्खुनियों के लिए 311 नियम संकलित किए गए हैं। यह एक ऐसी घटना थी जिसने पिछले कई शताब्दियों से परिवार, विवाह व समाज के पितृसत्तात्मक बन्धन में उलझी स्त्री समाज को अध्यात्म के क्षेत्र में अपनी मुक्ति प्राप्ति का अवसर दिया। जिसने ब्राह्मण समाज के कठोर नियमों को जिसे ईश्वर की आज्ञा के रुप में शास्त्रों में संग्रहित किया गया था, उसको चकनाचूर कर दिया। यह संयोग आज से लगभग 2550 वर्ष पूर्व हुआ था। बौद्ध धर्म के आविर्भाव के उपरान्त हीं हमें भारतवर्ष में मातृसत्तात्मक समाज के उत्थान की झलक मिलती है।

कुछ नारी-रत्नों ने संसार के वैभव को त्याग काषाय-वस्त्र धारण कर साधना-पथ को अपनाया और कुछ गृह में निवास करती हुईं शील-पालन द्वारा त्रिरत्न की शरण में रह अपना जीवन सफल कर लिया। बुद्ध काल से इस समय तक की आदर्श बौद्ध-महिलाओं का जीवन-चरित्र देने का विशेष प्रयत्न यहां किया गया है। यद्यपि यह पूर्ण है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, फिर भी यथा-सम्भव प्रयत्न किया गया है।

अञ्ञतरा थेरी

सुखं सुपाहि थेरिके कत्वा चोलेन पारुता । उपसन्तो हि ते रागो सुक्खडाकं व कुम्भियं ॥1॥ इत्थं सुदं अञ्ञतरा थेरी अपञ्ञाता भिक्खुणी गाथं अभासित्थाति॥

वत्से ! तू सुख की नींद सो ।अपने हाथ से बनाये हुए चीवर को ओढ़कर, तू (इस शरीर में) परम शान्ति प्राप्त कर । क्योंकि कड़ाही में पड़े हुए शुष्क शाक की तरह, तेरा राग-समूह (दग्ध होकर) शान्त हो गया है ! ॥1॥

भारतीय-संस्कृति के निर्माण में नारी-समाज ने प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण कार्य किये हैं। नारी के कारण समय-समय पर संस्कृति का रूप भी परिवर्तित हुआ है । उसे कभी पुरुष के समकक्ष माना गया है तो कभी भोग-विलास की वस्तु मात्र । अतः भारतीय-संस्कृति के पूर्ण ज्ञान के लिए नारी-जीवन का ज्ञान होना आवश्यक है ।

ईसा के लगभग एक हजार वर्ष बाद भारत पर इस्लामिक अताताइयों का आक्रमण प्रारम्भ हुआ तथा दो-तीन सदियों के उपरान्त यहाँ उनका राज्य भी हो गया। वह राज्य, जो कि इतिहास में मुगल-साम्राज्य के नाम से विख्यात हुआ, नारियों के विकास में अत्यधिक घातक सिद्ध हुआ| कारण, उक्त राज्य में नारी के शील-रक्षण का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण हो गया । फलतः नारियों की सामाजिक गतिविधियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तथा वे परदे के भीतर बन्द-सी कर दी गई । इससे नारियों की शिक्षा को गहरा आघात पहुंचा और वे एक प्रकार से अज्ञानता एवं पराधीनता के बन्धनों में जकड़ दी गईं ।

तदुपरान्त भारत पर अंग्रेजों ने अपना राज्य कायम किया। यद्यपि अंग्रजों के शासन-काल में शिक्षा का प्रसार हुआ किन्तु अंग्रेजी भाषा को दिए गए अत्यधिक महत्त्व के कारण इस देश की जनता ने पालि, प्राकृत, संस्कृत आदि भाषाओं में लिखे ग्रन्थों में बिखरी भारतीय-संस्कृति को जानने या उस पर गौरवशील होने का अनुभव ही नहीं किया । हालांकि भारतीय समाज में महिलाओं को सम्मान और बराबरी का स्थान दिलाने में अंग्रेजी राज का शुक्रगुजार होना चाहिए क्योंकि अंग्रेजी शासन काल में हीं सबसे वीभत्स प्रथा जो मध्यकालीन भारतीय महिला समाज पर जबरदस्ती थोपी गई थीं सती प्रथा के अन्त की घोषणा हुई थी ।

"चूंकि मैं जिस मनिहारी नगर से हूं 1770 के कालखंड में जब यह पूर्णिया जिले के अन्तर्गत आता था, 14 फरवरी 1770 को पूर्णिया जिला वर्तमान पूर्णिया, कटिहार, अररिया और किशनगंज क्षेत्र को मिला कर बनाया गया था । जॉर्ज डुकरैल ने जो पूर्णिया जिले के पहले जिलाधिकारी थे, सोरा नदी किनारे चिता में सती की जा रही विधवा स्त्री का जीवन बचाने के लिए उसे अपनी पत्नी की मान्यता दी, वो पूर्णिया जो उस समय कालापानी के नाम से मशहूर था। वो उनका ससुराल भी बन गया था। ऐसी मानवता और सती प्रथा के विरूद्ध खड़े होने वाले और विधवा विवाह के पक्षधर जिन्होंने अपनी कृति से पूर्णिया को गौरवान्वित किया था, ऐसे पहले जिलाधिकारी को हमारा सलाम है।"

4 दिसंबर, साल 1829 को लॉर्ड विलियम बेंटिक की अगुवाई और राजा राम मोहन राय जैसे भारतीय समाज सुधारकों के प्रयासों से सती प्रथा पर भारत में पूरी तरह से रोक लगी थी। आधुनिक भारत के जनक राजा राम मोहन राय ने सती प्रथा को खत्म करने के लिए कई जतन किए. इसी के साथ उन्होंने विधवा विवाह को भी सही ठहराया था । बाल हत्या लड़कियों के सन्दर्भ में, बाल विवाह, दासी प्रथा, महिला शिक्षा के लिए कॉलेज और स्कूल का निर्माण, पर्दा प्रथा, बहुपत्नी प्रथा, विवाह, तलाक और सम्पत्ति के अधिकारों में असमानता आदि पर ब्रिटिश कालखंड में हीं सुधारों की शुरूआत हुई थी।

भारतीय-संस्कृति मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त की जाती है- वैदिक संस्कृति एवं श्रमण संस्कृति। वैदिक संस्कृति के मूल साहित्य में वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, धर्मसूत्र आदि प्रमुख हैं। श्रमण संस्कृति के आज तक दो रूप जीवित हैं- जैन संस्कृति एवं बौद्ध संस्कृति । इन दोनों ही संस्कृतियों के मूल साहित्य को आगम-साहित्य के नाम से जाना जाता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जैनागमों का भाव श्वेताम्बर-सम्प्रदाय द्वारा सम्मत 45 आगमों से है।

भगवान् महावीर एवं भगवान बुद्ध ने ईसा की लगभग पाँचवीं-छठी सदी पूर्व अपने धर्म का प्रसार लौकिक भाषा प्राकृत व पालि के माध्यम से किया था । उक्त दोनों महापुरुषों का निर्वाण क्रमशः ईसा के लगभग 526 तथा 484 वर्ष पूर्व में हुआ था।

गौतम बुद्ध की प्रमुख महिला शिष्या

बुद्ध ने महिलाओं को नाम प्रदान किए, दोनों भिख्खुनी और आम, जो प्राप्ति और चरित्र के उदाहरण थे। ये क्रमशः अंगुत्तर निकाय के पंचम वग्गा और षष्ठ वग्गा में सूचीबद्ध हैं;

वरिष्ठता में सबसे आगे: महाप्रजापति गौतमी
महान ज्ञान में सबसे आगे: खेमा
मानसिक शक्ति में सबसे आगे: उप्पलवणा
विनय कंठस्थ करने में सबसे आगे: पटाचारा
धम्म बोलने में सबसे आगे: धम्मदिन्ना
अवशोषण में सबसे आगे: सुंदरी नंदा
ऊर्जा में सबसे आगे: सोना

पेशनीगोई में सबसे आगे: सकुला
तीव्र अंतर्दृष्टि में सबसे आगे: भद्दा कुंडलकेसा
पिछले जन्मों को याद करने में सबसे आगे: भद्दा कपिलानी
महान अंतर्दृष्टि में सबसे आगे: भद्दकच्चना
मोटे वस्त्र धारण करने में अग्रणी: किसागोतमी
आस्था में सबसे आगे: सिंघालकामाता
उपासिकाओं (गृहणियों) में अग्रणी: -
शरण के लिए पहली बार जाने में सबसे आगे: सुजाता सेनियाधिता
दाता के रूप में अग्रणी: विशाखा
विद्या में अग्रणीः खुज्जुत्तरा
सबसे पहले जो मेट्टा में रहता है: सामवती
अवशोषण में सबसे आगे: उत्तरानंदमाता
उत्तम वस्तुएँ देने में सबसे आगे: सुप्पवास कोलियधिता
बीमारों की देखभाल में सबसे आगे: सुप्पिया
अनुभवात्मक विश्वास में अग्रणी: कात्यायनी
विश्वसनीयता में सबसे आगे: नकुलमाता
मौखिक प्रसारण के आधार पर विश्वास में सबसे आगे: कुराराघरा की काज़ी

संत-साहित्य पर प्रायः यह आरोप किया गया है कि नारी-निंदा इसका एक प्रमुख अंश है। गहराई से देखने पर इस दोषारोपण में सत्य का कुछ ही अंश मिलेगा। पूर्ण सत्य तो यह है कि संतों या ज्ञानियों ओर भिक्षुओं ने निन्दा अथवा कठोर आलोचना सर्वत्र काम-वासना की ही की है और उनमें बहुत बड़ी संख्या पुरुष साधकों की हीं रही है। किन्तु असल में नारी को अत्यधिक अपमानित तो हमारे श्रृंगार-रसप्रधान साहित्य में किया गया है। जिस काम-वासना की यतियों और भिक्षुओं ने भर्त्सना की है, उसी को श्रृंगारिक कवियों ने अलंकृत भाषा तथा आकर्षक शैली में अभिव्यक्त एवं उत्तेजित किया है । नारी के बाह्य रूप पर ही सदा उनकी कामुक दृष्टि अटकी रही हैं। उसके आंतरिक रूप अथवा शील का स्पर्श उनकी प्रतिभा ने शायद ही कभी किया। नारी को मात्र प्रदर्शन की वस्तु बनाकर उसका भारी अपमान किया गया। सब संत-साहित्य में इसकी प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक था | जरा-मरण-परिणासी रूप-सौन्दर्य की असलियत को ज्ञान-चक्षुओं से देखा यतियों और भिक्षुओं ने और भिक्षुणियों ने भी ।

अंतर्चक्षुओं के खुलते ही एक बौद्ध भिक्षुणी गा रही है
अम्बपाली थेरी -

काननम्हि वनसण्डचारिनी कोकिला व मधुरं निकूजितं । तं जराय खलितं तहिं तहिं सच्चवादिवचनम नञ्ञथा ॥ 261 ॥ पीनवट्टपहितुग्गता उभो सोभते सु थनका पुरे मम । थेरीति ब लम्बन्ते' नोदका सच्चवादिवचनम नञ्ञथा ॥| 265 ॥

"वनचारिणी कोकिला की मधुर कूक के समान किसी समय मेरी प्यारी मीठी बोली थी, वही आज जरावस्था में स्खलित और भराई हुई है; स्थूल, सुगोल उन्नत कभी मेरे दोनों स्तन सुशोभित होते थे, वही आज जरावस्था में पानी से रीती लटकी हुई चमड़े की थैलियों के सदृश हो गये हैं;

सुन्दर, विशुद्ध, स्वर्ण-फलक के समान कभी मेरा शरीर चमकता था, वही आज जरावस्था में सूक्ष्म झुर्रियों से भरा हुआ है। रूप-लावण्य का क्या ही यथार्थ दर्शन इस चक्षुष्मती स्थविरा ने किया है ! एक दूसरी थेरी का महा पुरुषार्थ देखिए। वह विश्व-विजयी मार को किस तेजस्विता के साथ डांट रही है, "काम-तृष्णा और स्कन्ध-समूह भाले की तरह बिद्ध करते हैं, जिसे तू भोगों का आनन्द कहता है वही मेरे लिए दुःख है, घृणा का कारण है । वासना का सब जगह से उच्छेदन कर मैंने अज्ञानान्धकार को विदीर्ण कर दिया है । पापी मार ! प्राणियों का अंत करने वाले ! समझ ले, आज तेरा ही अंत कर दिया गया। तू मार डाला गया !

इन भिख्खुनियों ने, इन थेरियों ने, वासना की जड़ को तोड़ डाला था, हृदय-मूल से दाहक तृष्णा-तन्तुओं को उखाड़ कर फेंक दिया था, उनके समस्त मल नष्ट हो गये थे, क्योंकि उन्होंने अशुचि, दुर्गन्धमय और व्याधियों के भरे शरीर का ध्यान किया था, उसे एकाधिक बार अशुभ भावना की दृष्टि से देखा था। और अब वे सब निर्माण-पथ-गामिनी थेरियाँ सम्यक् संबुद्ध का उपदेशामृत पीकर परितृप्त थीं, प्रसन्नचित्त थीं। उनके जीवन में अब अन्धकार नहीं, प्रकाश था; निराशा नहीं, मंगल आशा की उषा थी; उनके निवंद में ले आनन्द-ही-आनन्द छलकता था। उनके पुण्य प्रमोद के गीत उद्धार थे :

"आज मेरी भव-बेड़ी कट गई | मेरे हृदय में बिंधा हुआ तीर निकल गया । तृष्णा की लौ सदा के लिए बुझ गई । सब चित्त मलों से मैं विमुक्त हूं । सभी बोझों को उतार कर मैंने फेंक दिया है । मैं सर्वोत्तम मंड्गलों की अधिकारिणी हूं आज । अब मैं सर्वथा निष्पाप हूँ, परम शान्त हूँ।"

ऐसी हैं बौद्ध भिक्षुणियों की, थेरियों की लोक-कल्याणकारी गाथाएँ ओर पुण्य कथाएँ।

"पालि-वांग्मय से थेरी-गाथाओं को अनुवादित कर विद्वतवर पंडित भरतसिंह उपाध्याय ने हिन्दी-साहित्य की वास्तव में परमसेवा की है। अनुवाद यथार्थ, शैली सरल और भाषा सुन्दर और सजीव है। आशा है, हिन्दी जगत में थेरी-गाथाओं का समुचित आदर होगा । ऐसे श्रेयस्कर साहित्य की आज अधिक आवश्यकता रही है। पाश्चात्य भोग-प्रधान सभ्यता का आज जिस प्रलय वेग से हमारे देश पर आक्रमण हो रहा है, उसे कुछ हद तक रोकने में, मेरी श्रद्धा है, ऐसा साहित्य अवश्य सहायक हो सकता है। कन्या-विद्यालयों एवं महिला-विद्यालयों के पाठ्य-क्रम में थेरी-गाथाओं को स्थान मिलना ही चाहिए । इसके अधिक-से-अधिक प्रचार का हम सभी आकांक्षी हैं |" - वियोगी हरि, 1950

पालि बौद्ध साहित्य तीन पिटकों या पिटारियों में रखा हुआ है। वे तीन पिटक हैं - सुत्तपिटक, विनयपिटक, और अभिधम्मपिटक । सुत्तपिटक पाँच निकायों अथवा शास्त्र समूहों में विभाजित है- दीघनिकाय, मज्झिमनिकाय, संयुक्तनिकाय, अंगुत्तरनिकाय और खुद्दकनिकाय । खुद्दकनिकाय में 14 अन्य हैं। उन्हीं में से एक है थेरीगाथा (भिख्खुनियों की गाथाएँ)।

थेरीगाथा - 522 गाथाओं (पालि श्लोकों) का एक संग्रह है, जिसमें 73 बौद्ध भिख्खुनियों के उद्गार सन्निहित हैं, जो 16 भागों में विभक्त हैं। अत्यन्त संगीतात्मक भाषा में, आत्माभिव्यंजनात्मक गीति-काव्य की शैली के आधार पर, अपने जीवनानुभवों को व्यक्त करते हुए यहां बौद्ध भिख्खुनियों ने अपने जीवन-काव्य को गाया है। नैतिक सच्चाई, भावनाओं की गहनता और सबसे बढ़कर एक अपराजित वैयक्तिक ध्वनि, इन गीतों की मुख्य विशेषताएँ हैं। निर्वाण की परम शान्ति से भिक्षुणियों के उद्गारों का एक-एक शब्द उच्छ्वसित है। यहाँ संगीत भी है और जीवन का सच्चा दर्शन भी |

भद्दा थेरी -

सद्धाय पब्बजित्वान भद्दे भद्दरता भव । भावेहि कुसले धम्मे योगक्खेमं अनुत्तरं ॥ 9 ॥।

भाग्यवती भद्रे ! तूने श्रद्धापूर्वक प्रव्रज्या ली। अब तू उसके अनुकूल कल्याणकारी धर्म (भद्र) में लीन हो जा । कुशल धर्म का अनुशीलन करती हुईं, तू परम शांति के मार्ग में अग्रसर होगी ! ॥6॥

आधुनिक गीत की परिभाषा करते हुए महादेवी वर्मा ने कहा है, "सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था का गिने-चुने शब्दों में स्वर-

साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है”
इस अर्थ में भिक्षुणियों की गाथाएँ श्रेष्ठतम गीत कही जा सकती हैं; किंतु आधुनिक गीतों से इनकी अनेक विशेषताएँ भी हैं। सबसे बड़ी और प्रधान बात तो यह है कवि आधुनिक गीतकार की चिरसंगिनी वेदना का यहाँ पता तक नहीं है । बौद्ध भिक्षुणियां निराशावादिनी नहीं हैं । निर्वाण की परम शान्ति का वर्णन करते हुए वे थकती नहीं। जीवन की विषमताओं पर अपनी विजय का ही वे गान गाती हैं। अपनी निम्न प्रकृति (मार) से वे डट कर लड़ती हैं और इस पर विजय प्राप्त करती हैं। विजय-प्राप्ति की अवस्था में उनका यह उद्गार फूट पड़ता है, “अहो ! मैं बुद्ध की कन्या हूं। उनके मुख से उत्पन्न, उनके हृदय से उत्पन्न !” नारी-जीवन की भगवान बुद्ध की अनुकम्पा का कितना बड़ा भाग मिला था ! अवसाद और दुश्चिंता की यहाँ कहीं झलक तक नहीं है । “अहो ! मैं कितनी सुखी हूं ! मैं कितने सुख से ध्यान करती हूं ।”
यह उनके उद्गारों की प्रतिनिधि ध्वनि है । बार-बार उनका यही प्रसन्न उद्गार होता है, “सीतिभूतम्हि निब्बुता।” अर्थात् निर्वाण को प्राप्त कर मैं परम शान्त हो गई, निर्वाण की परम शान्ति का मैंने साक्षात्कार कर लिया । निराशा, दुःख और स्वच्छन्दता की प्रवृत्तियां जो विश्व के अधिकांश गीति-साहित्य की विशेषताएँ हैं, यहाँ बिल्कुल नहीं मिलेंगीं। भिख्खुणियों के उद्गारों में निराशा-वाद का निराकरण है, पुरुषार्थ की विजय है, साधना लब्ध इन्द्रियातीत सुख का साध्य है और नैतिक ध्येयवाद की प्रतिष्ठा है। आज बुद्ध और बौद्ध संस्कृति के नाम के साथ दुःख और निराशावाद के तत्वों को अक्सर जोड़ दिया जाता है । कुछ एक आधुनिक गीतकारों के विषय में तो यहाँ तक कह दिया गया है, कि उनकी वेदना पद्धति पर बौद्ध प्रभाव उपलक्षित है; किन्तु यह एक शुद्ध भ्रम है । बुद्ध या उनके शिष्य भिक्षु-भिक्षुणियों ने कभी दुःख और निराशा के गीत नहीं गाए | भगवान बुद्ध का आविर्भाव ही दुःख के प्रहाण के लिए हुआ। जो कुछ भी दुःख का वर्णन बौद्ध धर्म में है, वह इसी दृष्टि से है कि “जो दुख्ख को देखता है, वह उसके समुदय को भी देखता है, उसके निरोध को भी देखता है और निरोध के मार्ग को भी ।” अतः यह दुःख-दर्शन भी अन्त में सुख में पर्यवसित होता है, जिसका साक्षात्कार यहीं जीते-जी निर्वाण के रूप में किया जाता है | इसके विपरीत आधुनिक गीति-काव्य में अतृप्त वासना है, अजब सौन्दर्य की उपासना है, जिससे निराशा पैदा होती है । आज का कवि सौन्दर्य-पान को जीवन का लक्ष्य बताता है, फिर उसे विष का स्वाद क्यों बतलाना पड़े ? किन्तु बौद्ध भिख्खुनियाँ तो अशेष संस्कारों को ही अनित्य, दुख्ख और अनात्म मानती हैं, वासना के क्षय के लिए प्रयत्न करती हैं, सौन्दर्य में अशुभ की भावना करती हैं। फिर इन बंधनों से मुक्ति प्राप्त कर लेने पर उनके सुख के दिन क्यों न हों ? यही आधुनिक गीतों और इन भिख्खुनियों के गीतात्मक उद्गारों की मुख्य विभिन्नताएँ हैं ।

थेरी-गाथाः में 73 भिख्खुनियों के उद्गार सन्निहित हैं । ये सभी भिख्खुनियाँ भगवान बुद्ध की शिष्याएँ थीं। महाराज शुद्धोदन की मृत्यु के उपरान्त भगवान बुद्ध ने अपनी विमाता महाप्रजापति गोतमी को भिक्षुणी होने की अनुमति दे दी थी। उसके साथ पांच सौ अन्य महिलाएं भी प्रवर्जित हुई थीं। कालान्तर में भिख्खुनियों का एक अलग संघ ही बन गया था और नाना कुलों और नाना जीवन की अवस्थाओं से प्रज्ञापित होकर स्त्रियों ने शाक्यमुनि के पाद-मूल में बैठ कर साधना का सान्निध्य स्वीकार किया था। इन्हीं में से 73 भिख्खुनियाँ अपने जीवनानुभवों को हमारे लिए अनुकंपा-पूर्वक छोड़ गई हैं, जो थेरी-गाथा के रूप में आज हमारे लिए उपलब्ध है। यही थेरीगाथा की रचना का संक्षिप्त इतिहास है।

किस उद्देश्य से, किन कारणों से, किस सामाजिक परिस्थिति में प्रत्येक भिख्खुनी ने बुद्ध, धम्म और संघ की शरण ली थी, इसका संक्षिप्त विवरण थेरीगाथा की टीका ‘परमत्वदीपनी’ (5वीं शताब्दी) के आधार पर प्रत्येक गाथा के आरम्भ में दिया गया है । इससे प्रत्येक भिख्खुनी के जीवन-वृत्त के साथ उसकी गाथा का सम्बन्ध मिलाते हुए और अवेक्षण करते हुए, जिनमें उनके ये उद्गार निकले थे. विद्वत् जन सह आम जन इन संप्रवर्तक गाथाओं की आत्मा को समझ सकेंगे, ऐसा विश्वास है ।
प्रस्तुत अनुवाद सन् 1947 में हिन्दुस्तानी अकादमी की तिमाही पत्रिका “हिन्दुस्तानी” के अप्रैल-सितम्बर अंक में निकला था।
बौद्ध भिक्षुओं के वार्तालाप थेरगाथा नामक ग्रन्थ में लिखे गये हैं और भिक्षुणियों के वार्तालाप का ग्रन्थ है थेरीगाथा। थेरीगाथा के नीचे लिखे अवतरण को पढ़कर सहज ही ज्ञात हो जाता है कि गौतमी का हृदय बुद्ध के प्रेम से कितना परितृप्त था।

महापजापती गोतमी
बुद्धवीर नमोत्यत्थु सब्बसत्तानं उत्तम | यो मं दुक्खा पमोचेसि अञ्ञञ्च बहुकं जनं॥ 157 ॥ सब्बदुक्खं परिञ्ञातं हेतुतण्हा विसोसिता । अरियट्ठङ्गिको मग्गो निरोधो फुसितो मया ॥ 158 ॥ माता पुत्तो पिता भाता अय्यिका च पुरे अहुं। यथाभुच्चं अजानन्ती संसरिहं अनिब्बिसं ॥ 159 ॥ दिट्ठो हि मे सो भगवा अन्तिमोयं समुस्सयो । निक्खीणो जातिसंसारो नत्थि दानि पुनब्भवो ॥ 160 ॥! आरद्धविरिये पहितत्ते निच्चं दलहपरक्कमे । समग्गे सावके पस्स एसा बुद्धान वन्दना ॥ 161 ॥। बहुनं वत अत्थाय माया जनयि गोतमं । ब्याधिमरणतुन्नानं दुक्खक्खन्धं ब्यपानुदि ॥ 162 ॥
“हे सुगत | तुम जब छोटे थे, तब तुम्हें देखकर और तुम्हारी तोतली बोली सुनकर आँख-कान को जितनी तृप्ति हुई थी, उससे कहीं अधिक तृप्ति तुम्हारे दिये धर्म-रस का पान करने से हुई है।
“हे गौतम! मेरी बहिन माया ने लोक-हित के लिये ही तुम्हें पैदा किया था । वृद्धावस्था, दुःख-व्याधि, मृत्यु और शोक के रुदन को तुमने हरण कर लिया है । ये दोनों माता और पुत्र— गौतमी और गौतम साक्षात् भक्ति ओर ज्ञान के स्वरूप हैं, इनकी लोक-लीला अलौकिक है ।”
गौतमी का चलाया हुआ भिक्षुणी-संघ लगभग हजार वर्ष तक देश-विदेश में धर्म-प्रचार करके त्रिविध ताप-त्रस्त नर-नारियों के हृदय को शान्ति प्रदान करता रहा । गौतमी ने भिक्षुणी-संघ को लेकर ज्ञान और सदाचार का जो मन्त्र घर-घर में फूँका था; निश्चय ही उसका प्रभाव आज भी नारी-समाज के जीवन में अंतर्विष्ट है । भिक्षुणी-संघ नारी जागरण का एक उज्ज्वल उदाहरण है और उसका नेतृत्व करने के कारण गोतमी का जीवन विश्व-नारी के लिये पठन, मनन और अनुकरण करने की वस्तु है।
बौद्धोत्तर काल में भी जब हम सम्राट अशोक महान् के द्वारा अपनी पुत्री संघमित्रा को सिंहल द्वीप भेजा जाता है तो सबसे पहले उसे भिख्खुनी के रूप में बौद्ध संघ की दीक्षा दी जाती है। जो सिंहल द्वीप में सदा के लिए अमर हो जाती हैं। सम्पूर्ण विश्व इतिहास में ऐसा कोई दूसरा उदाहरण प्राप्त नहीं होता है जहां एक पिता अपनी पुत्री को मानवता की सेवा में इस प्रकार समर्पित करते हैं।

सिंहल द्वीप में भिख्खुनी संघ
पाटलिपुत्र में आयोजित तृतीय बौद्ध संगीति के उपरान्त थेर महेन्द्र को बत्तीस वर्ष की आयु में धर्म-प्रचार के लिये सिंहल- द्वीप में भेजा गया। उस देश के राजा तिस्य आध्यात्मिक ज्योति से दीप्त महेन्द्र के सुन्दर स्वरूप को देखकर विस्मित हो उठे। उन्होंने बहुत ही श्रद्धा और सत्कार पूरवक महेन्द्र को अपने यहाँ रक्खा । सिंहल में

सहस्त्रों स्त्री-पुरुष महेन्द्र के उपदेश को सुनकर बौद्ध धर्म ग्रहण करने लगें। थोड़े दिनों के बाद सिंहल की राजकुमारी अनुला ने पाँच सौ सखियों के साथ भिक्षुणी-व्रत लेने का संकल्प किया, उस समय महेन्द्र के मन में आया कि इन सब स्त्रियों को अच्छी तरह धर्म की शिक्षा देने तथा स्त्रियों में धर्म प्रचार करने के लिये एक शिक्षिता और धर्मशीला भिक्षुणी की अत्यन्त आवश्यकता है । इसलिये उसने अपनी बहिन संघमित्रा को सिंहल भेजने के लिये अपने पिता अशोक के पास संदेश भिजवाया । राजकुमारी संघमित्रा को तो धर्म के सिवा किसी दूसरी पार्थिव वस्तु की चाहना थी नहीं । उसने जब सुना कि धर्मप्रचार के लिये उसे अपने भाई महेन्द्र के पास सिंहलद्वीप में जाना है तो उसके हृदय में आनन्द न समाया। पुण्यशीला संघमित्रा ने धर्मप्रचार के लिये सिंहल-द्वीप को प्रस्थान किया । भारत के इतिहास में यह पहला ही अवसर था; जब एक महामहिमशाली सम्राट की कन्या ने सुन्दर शिक्षा-दीक्षा तथा धर्मानुष्ठान के द्वारा जीवन की पूर्णता को प्राप्त कर दूर देश की नारियों को अज्ञानान्धकार से मुक्त करने के लिये देश से प्रयाण किया । उस समय भारत में संघमित्रा के इस धर्म-प्रयाण के समाचार से लोगों के हृदय में उसके प्रति कैसी उदात्त भावना का उदय हुआ होगा, इसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती है। संघमित्रा जब सिंहल में पहुँची तो उसकी तेजस्विनी मुख-मुद्रा, तपस्विनी का वेष तथा अपूर्व धर्मभावना देखकर वहाँ के स्त्री-पुरुष चित्रलिखित से हो गये | संघमित्रा ने वहाँ एक भिक्षुणी-संघ स्थापित किया और अपने भाई महेन्द्र के साथ उसने सिंहलद्वीप के घर-घर में बौद्धधर्म की वह अमर ज्योति जगायी, जिसके प्रकाश में आज ढाई हजार वर्ष बीतने पर भी सिंहल निवासी नर-नारी अपनी जीवन-यात्रा व्यतीत करते हैं, और भगवान् तथागत, उनके उपदिष्ट धर्म और संघ की शरण में जयघोष करते हैं । महावंश नामक बौद्ध ग्रन्थ में संघमित्रा का उल्लेख मिलता है । महावंश का लेखक लिखता है कि 'संघमित्रा ने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया था । सिंहल में रहते समय धर्म की उन्नति के लिये उसने बहुतेरे पुण्य कार्य किये थे । सिंहल के राजा ने बड़े ही आदर-सत्कार तथा ठाठ-बाट से उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया की थी।

जो भी हो, इस पवित्र भारत देश में एक-से-एक बढ़कर आदर्श जीवनयापन करने वाली नारियाँ हुई हैं; परंतु संघमित्रा का काम सम्राट अशोक की कन्या के अनुरूप ही था। सम्राट को इतिहासकारों ने 'महान्' पदवी से विभूषित किया। परंतु देवी संघमित्रा की महत्ता उससे कहीं बड़ी थी, सिंहल का इतिहास इसका साक्षी है। अपने महाराजाधिराज अशोक महान् की कन्या देवी संघमित्रा के पवित्र और उन्नत जीवन का स्मरण करके आज भी हमारा सिर श्रद्धा से झुक जाता है।

एक तरफ प्रो. धर्मानन्द कौशाम्बी भारत में चौथी शताब्दी में भिक्षुणी संघ के ह्वास का जिक्र करते हैं, वहीं 7वीं शताब्दी में चीनी बौद्घ तीर्थयात्री ह्वान-त्सांग जब भारत भ्रमण को आते हैं तब भी उन्हें कई स्थानों पर भिख्खुनी संघ और विहारों के दर्शन होते हैं, जिनका जिक्र वो अपने यात्रा-वृतान्त में करते हैं।

"साज्ज अब्बूल्हसल्लाहं निच्छाता परिनिब्बुता । बुद्ध धम्मं च संघं च उपेमि सरणं मुनिं॥" – थेरीगाथा

बौद्धागमों से ज्ञात होता है कि उस समय नारी-समाज का प्रत्येक वर्ग भिक्षुणी-जीवन से आकृष्ट एवं प्रभावित था। सामाजिक एवं पारिवारिक-जीवन से उदास या भयभीत प्रत्येक नारी भिक्षुणी-संघ की शरण लेती थी।

वैदिक-साहित्य में भिक्षुणी-संघ या उससे मिलती-जुलती किसी संस्था का उल्लेख नहीं मिलता है। इस कालखंड में महिलाओं का धार्मिक-जीवन सिर्फ गृहस्थाश्रम तक ही सीमित था। वानप्रस्थ एवं सन्यासाश्रम में प्रवेश करने का अधिकार केवल पुरुष-वर्ग को ही था। उत्तर-वैदिक-काल में नारी धार्मिक-अधिकारों से वंचित कर दी गई। उसे उपनीत एवं शिक्षित करना भी अनावश्यक समझा जाने लगा। फलतः अनुपनीत एवं अशिक्षित नारी शुद्र की श्रेणी में आ जाने से भोग्यवस्तु के रूप में समाज में रहने लगी थी। उसे वेदों के मन्त्रोच्चारण तक का भी अधिकार नहीं रह गया था ।

बौद्ध-भिक्षुणी-संघ का प्रारम्भ

बौद्ध युग में परिवार की स्त्रियों को पुरुषों के समान धर्म-पालन का अधिकार था, अपितु वे पुरुषों की भाँति गृहावास त्यागकर बुद्ध के द्वारा संस्थापित भिक्षुणी-संघ में भी प्रवेश लेती थीं। संघ में पुरुष एवं नारी, क्रमशः भिक्षु एवं भिक्षुणी के रूप में रहकर दुःखों के विनाश के लिए साधना करते थे | बुद्ध के द्वारा भिक्षुणी-संघ की स्थापना का नारियों ने हार्दिक स्वागत किया था तथा उसमें प्रविष्ट होने के लिए अभूतपूर्व उत्साह दिखाया था।

भिक्षु-संघ की स्थापना के पाँच वर्ष बाद भगवान बुद्ध की मौसी महाप्रजापति गोतमी उनके पास उस समय पहुँची जब वे कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में विहार कर रहे थे तथा उनसे स्त्रियों के लिए प्रवज्या देने का अनुरोध किया किन्तु बुद्ध ने इस अनुरोध को स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार कर दिया । गोतमी इस अस्वीकृति से निराश नहीं हुई। वह कुछ दिनों के बाद पुनः बुद्ध से मिलने वैशाली गई । इस बार उन्होंने केशों को कटवा लिया था तथा शरीर पर काषाय वस्त्र धारण कर लिए थे। इसके अतिरिक्त अन्य शाक्य-स्त्रियों को भी साथ में ले लिया था । वह कपिलवस्तु से वैशाली पैदल गई थी। गौतमी प्रवज्या पाने के पूर्व हीं प्रव्राजित व्यक्ति जैसी वेशभूषा धारण कर पैदल इसलिए गई थी कि बुद्ध केवल नारी की शारीरिक दुर्बलता के कारण उसे संघ में प्रवेश देने के अयोग्य न समझें । वैशाली में उसकी आनन्द से भेंट हुई। आनन्द ने गौतमी की इच्छा को समझकर स्वयं बुद्ध के पास जाकर स्त्रियों के लिए प्रवज्या देने का अनुरोध किया, किन्तु बुद्ध ने पुन: उस विषय में अपनी असहमति प्रकट की । तत्पश्चात आनन्द ने बुद्ध को उनके उस सिद्धान्त का, जिसमें स्त्रियों को भी अर्हत पद पाने का अधिकारी बताया गया था, स्मरण कराते हुए कहा कि गोतमी आपकी अभिभाविका, पोषिका, क्षीरदायिका हैं। जननी के मरने के बाद उन्होंने बहुत उपकार किये हैं, अतः स्त्रियों को प्रवज्या की अनुमति दें ।

निष्कर्ष

डॉ. विमल कीर्ति ने थेरीगाथा के बारे में लिखा है कि – "यह ग्रंथ सम्पूर्ण पालि साहित्य में हीं नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में एक अनोखा और अनमोल ग्रन्थ है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में थेरीगाथा के मुकाबले का कोई ग्रन्थ नहीं है।"

डॉ. धर्मकीर्ति ने और भी सही लिखा है – "बौद्ध धर्म में थेरीगाथा विश्व का अमर ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ से पता चलता है कि वैदिक धर्म में नारी जाति को निम्न स्थान एवम् बच्चे पैदा करने की मशीन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं समझा जाता था। गीता में स्त्री वर्ग को पापयोनि कहा गया.....।" इसमें कुछ भी सन्देह नहीं किया जा सकता जब डॉ. विमल कीर्ति लिखते हैं – "थेरीगाथा नारी स्वतन्त्रता को प्रकट करने वाला प्रथम ग्रन्थ है।" चूंकि सन्दर्भ भारत के बौद्धों, जैनियों और वैदिकों का चल रहा है, इसलिए डॉ. भिक्षु सत्यपाल का यह कहना एकदम सही है कि 'तथागत ने इस मामले में क्रान्तिकारी विचार दे कर वैदिक तथा जैन परम्पराओं में आमूल-चूल परिवर्तन करके भिख्खुनियों द्वारा अर्हत्-पद प्राप्त करने की

संभावनाओं के द्वार खोल दिए।'
भगवान बुद्ध ने केवल स्त्री और पुरुष के अन्तर को हीं नहीं बल्कि महारानी और मेहतररानी (सफाईकर्मी) के अन्तर को भी मिटाने का सफल का प्रयास किया था। भिख्खुनी संघ में किसी प्रकार का भेदभाव की भावना उत्पन्न न हो, इसलिए तथागत बुद्ध ने महाप्रजापति गौतमी एवम् यशोधरा जैसी महारानियों और प्रकृति जैसी मेहतररानियों (चाण्डालकन्या) को संघ में प्रव्रज्या देने के उपरान्त एक पंक्ति में बिठा दिया।

थेरगाथा - स्थविर नन्दक
श्रावस्ती के एक सम्पन्न कुल में उत्पन्न। भगवान् से उपदेश सुनकर परम् पद को प्राप्त। उनसे उपदेश सुनकर 500 भिक्षुणियाँ अर्हत् पद को प्राप्त हुईं। भिक्षुणियों को उपदेश देनेवालों में सर्वश्रेष्ठ। नन्दक एक दिन भिक्षा के लिए श्रावस्ती में निकले तो पूर्व स्त्री उन्हें लुभाने के विचार से हंस पड़ी। उस अवसर पर नन्दक स्थविर ने यह उदान कहा:

"धीरत्थु पूरे दुग्गन्धे मारपक्खे अवस्सुते ।
नव सोतानि ते काये, यानि सन्दन्ति सब्बदा।। 279
"मा पुराणं अमञ्ञित्थो, मासादेसि तथागते ।
सग्गे पि ते न रज्जन्ति, किमङ्ग पन मानुसे।। 280
"ये च को बाला दुम्मेधा, दुम्मन्ती मोहपारुता।
तादिसा तत्थ रज्जन्ति, मारखित्तम्हि बन्धने।। 281
"येसां रागो च दोसो च, अविज्जा च विराजिता।
तादी तत्थ न रज्जन्ति, छिन्नसुत्ता अबन्धना" था।। 282

दुर्गन्धपूर्ण, मार के पक्ष में रहने वाली, वासनापूर्ण (तुम्हें) धिक्कार है। तुम्हारे शरीर में नवस्त्रोत हैं जिनसे सदा गन्दगी बहती है।। मुझे पहले जैसा न समझो, तथागत के शिष्य को प्रलोभन न दो। तथागत के शिष्य स्वर्ग में भी आसक्त नहीं होते, मनुष्य के विषय में तो कहना ही क्या है।। जो मूर्ख हैं, बुद्धिमान नहीं हैं, मोह से आच्छादित हैं, वे ही मार के फेंके हुए जाल में आसक्त हो जाते हैं।। जिनकी राग, द्वेष और अविद्या छूट गई है, जो स्थिर हैं, जिनके सांसारिक बंधन के सूत्र टूट गए हैं, जो मोहजाल से परे हैं वे वहां आसक्त नहीं होते।।

आभार
विश्वगुरु भगवान बुद्ध और थेरीगाथा की सभी अर्हत्व भगिनियों सह ज्येष्ठ रचनाकारों और बौद्ध विद्वत् जगत के सभी इतिहासकारों को, जिनकी रचनाओं से प्रेरणा प्राप्त कर मैंने अपना यह अत्यन्त मूल्यवान शोध पत्र लेखन पूर्ण किया। समानता की प्रतिमूर्ति कमला भसीन मैम को यह शोध पत्र मैं समर्पित करता हूं। मुझे पूर्णतः विश्वास है कि यह पत्र सर्व स्त्री समाज के लिए हितकारी होगा।

सन्दर्भ
1. सराओ करमतेज सिंह (2004), प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 60,87 से 109, 130 से 134
2. बापट पुरुषोत्तम विश्वनाथ (2010), बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष, प्रकाशन विभाग नई दिल्ली, भारत सरकार, पृष्ठ संख्या 4,5,7,8,13,99, 101 और 105
3. सांकृत्यायन महापंडित राहुल (2022), विनय पिटक, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 99 से 132 और 624 से 647
4. आंबेडकर बोधिसत्व बाबासाहेब भीमराव (2016), भगवान बुद्ध और उनका धम्म, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 181,201 से 204,390,391,396,400,429,430,433,435 और 468
5. मारग्रेट मैक्निकोल (1923), पोएम्स बाई इन्डियन वूमेन, एसोसिएशन प्रेस वाईएमसीए कोलकाता
6. लाहा डॉ. विमल चरण (2007), वूमेन इन बुद्धिस्ट लिटरेचर, एशियन एजुकेशनल सर्विसेज, पृष्ठ संख्या 1 और 26
7. भिक्षु डॉ. धर्मरत्न (2013), थेरगाथा, गौतम बुक सेन्टर दिल्ली, पृष्ठ संख्या 85
8. द्विवेदी पण्डित गौरीशंकर (1948), कल्याण नारी अंक विशेषांक 22 वाँ वर्ष, गीता प्रेस गोरखपुर
9. सस्ता साहित्य मंडल (1992), भारत के स्त्री रत्न भाग 3 दिल्ली, पृष्ठ संख्या 5,6,7,9,43, 49 और 71
10. 10.: डॉ. धर्मवीर (2005), थेरीगाथा की स्त्रियां और डॉ. अंबेडकर, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 13 से 21
11. भदन्त शांतिभिक्षु, महायान, विश्वभारती ग्रन्थालय कलकत्ता, पृष्ठ संख्या 59 और 60
12. भागवत एन. के. (1956), थेरी गाथा, बॉम्बे विश्वविद्यालय प्रकाशन बांबे
13. मालविका कुमारी विद्यावती (1950), आदर्श बौद्ध महिलाऐं, भारतीय महाबोधि सभा सारनाथ वाराणसी, पृष्ठ संख्या 1,5,6,12,35,85 और 92
14. उपाध्याय भरत सिंह (1950), थेरी गाथाएं, सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली
15. उपाध्याय आचार्य बलदेव (2017), बौद्ध दर्शन मीमांसा, चौखम्बा विद्याभवन प्रकाशन वाराणसी, पृष्ठ संख्या 5,7,18,19 और 344